नईदुनिया

संपादकीय

मातृत्व अवकाश में समानता: महत्वपूर्ण कदम

देश में मातृत्व अवकाश से जुड़े नियमों को लेकर चल रही बहस ने एक बार फिर संविधान में निहित समानता और स्वतंत्रता के अधिकारों को केंद्र में ला खड़ा किया है। विशेष रूप से गोद लेने वाली माताओं को मिलने वाले अवकाश के संदर्भ में सुप्रीम कोर्ट का हालिया फैसला न केवल कानूनी बल्कि सामाजिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह निर्णय मातृत्व की परिभाषा को जैविक सीमाओं से आगे बढ़ाकर मानवीय संवेदनाओं और बाल अधिकारों के दायरे में स्थापित करता है।

अब तक सामाजिक सुरक्षा संहिता की धारा 60(4) के अंतर्गत केवल उन महिलाओं को 12 सप्ताह का मातृत्व अवकाश दिया जाता था, जिन्होंने तीन महीने से कम उम्र के बच्चे को गोद लिया हो। इस प्रावधान में उम्र की शर्त ने अनेक गोद लेने वाली माताओं को इस अधिकार से वंचित कर दिया था। सुप्रीम कोर्ट ने इस शर्त को संविधान के खिलाफ मानते हुए स्पष्ट किया कि यह भेदभावपूर्ण है और अनुच्छेद 14 (समानता का अधिकार) तथा अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार) का उल्लंघन करता है। न्यायालय की खंडपीठ ने यह भी कहा कि जैविक माताओं को प्रसव के बाद स्वास्थ्य लाभ के लिए लंबी अवधि का अवकाश दिया जाता है, जो उचित है। किंतु गोद लेने वाली माताओं के मामले में मुद्दा शारीरिक पुनर्वास का नहीं, बल्कि नवजात या छोटे बच्चे के साथ भावनात्मक संबंध स्थापित करने और उसकी देखभाल सुनिश्चित करने का है। ऐसे में बच्चे की उम्र के आधार पर मातृत्व अवकाश में कटौती करना तर्कसंगत नहीं ठहराया जा सकता।

यह निर्णय इस तथ्य को स्वीकार करता है कि मातृत्व केवल जन्म देने से नहीं, बल्कि पालन-पोषण और स्नेह से परिभाषित होता है। यदि किसी महिला को गोद लेने के बाद पर्याप्त समय नहीं मिलेगा, तो वह बच्चे के साथ आवश्यक भावनात्मक जुड़ाव कैसे बना पाएगी? इससे न केवल माता, बल्कि बच्चे के समुचित विकास पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

समाज में गोद लेने की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करने के लिए भी यह फैसला अहम है। जब तक गोद लेने वाली माताओं को समान अधिकार और सुविधाएं नहीं मिलेंगी, तब तक इस व्यवस्था को व्यापक सामाजिक स्वीकृति मिलना कठिन रहेगा। यह निर्णय इस दिशा में एक सकारात्मक संकेत है कि राज्य और न्यायपालिका दोनों ही बच्चों के सर्वोत्तम हित को प्राथमिकता दे रहे हैं। यह कहना उचित होगा कि सुप्रीम कोर्ट का यह फैसला केवल एक कानूनी सुधार नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय की दिशा में एक बड़ा कदम है। यह मातृत्व की गरिमा को पुन: स्थापित करता है और यह संदेश देता है कि हर बच्चे और हर मां को समान सम्मान और अवसर मिलना चाहिए-चाहे वह संबंध जैविक हो या गोद लेने के माध्यम से बना हो।

नई विकास गाथा को ऊर्जा प्रदान कर रहा है भारत

मनोहर लाल

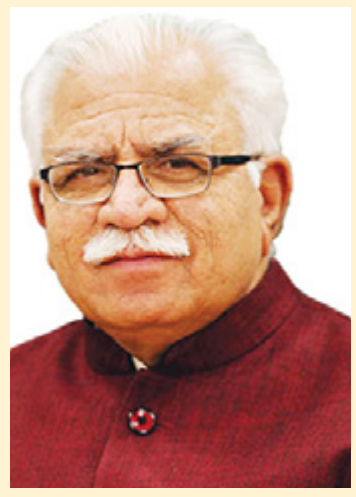

डिजिटल सशक्तिकरण हमारे आधुनिकीकरण की गाथा का महत्वपूर्ण अंश है। संशोधित वितरण क्षेत्र योजना (आरडीएसएस) के तहत 3.03 लाख करोड़ रुपये के खर्च के साथ हम पूरे देश में स्मार्ट प्रीपेड मीटर लागू कर रहे हैं, जिससे उपयोगिताओं और नागरिकों के बीच संबंधों में परिवर्तन आ रहा है।

प्राचीन प्रार्थना 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' - अर्थात हमें अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो - केवल आध्यात्मिक आकांक्षा भर नहीं, अपितु आधुनिक भारत की गाथा को भी दर्शाती है। बीते दशक में, कभी लगातार कमी से परिभाषित होने वाले विद्युत इकोसिस्टम को दुनिया के सबसे तेज़ी से बढ़ते, सबसे वैविध्यपूर्ण और सुधार-प्रेरित विद्युत बाज़ारों में से एक में परिवर्तित कर हमने इस आदर्श भावना को वास्तविकता में बदल दिया है।

जैसे-जैसे भारत स्वयं को एक वैश्विक विनिर्माण केंद्र, उभरती हुई डिजिटल अर्थव्यवस्था और स्वच्छ ऊर्जा की दिशा में जिम्मेदार नेतृत्वकर्ता के रूप में स्थापित कर रहा है, वैसे-वैसे विद्युत क्षेत्र हमारी राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता की आधारशिला बन गया है।

पिछले दशक में, हमने उत्पादन और पारेषण क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि की है, जिससे राष्ट्रीय ऊर्जा की कमी वित्त वर्ष 2013-14 में 4.2 प्रतिशत से घटकर वित्त वर्ष 2025-26 तक मात्र 0.03 प्रतिशत रह गई है। केवल वित्त वर्ष 2025-26 में ही (जनवरी 2026 तक), सभी स्रोतों से रिकॉर्ड 52.53 गीगावाट क्षमता जोड़ी गई है, जो एक ही वर्ष में जोड़ी गई अब तक की सर्वाधिक क्षमता है, जिसने 2024-25 में स्थापित 34.05 गीगावाट के पिछले सर्वोच्च स्तर को भी पार कर लिया है। कुल विद्युत उत्पादन वित्त वर्ष 2014 में 1,020.2 बीयू से बढ़कर वित्त वर्ष 2025 में 1,830 बीयू हो गया है। प्रति व्यक्ति खपत 2014 में 957 किलोवाट-घंटे से बढ़कर 2025 में 1,460 किलोवाट-घंटा हो गई है, जो आर्थिक विकास और बेहतर पहुँच को दर्शाती है। इससे यह सुनिश्चित हुआ है कि हर घर, खेत और उद्योग के पास उसकी आवश्यकता के अनुसार विश्वसनीय विद्युत उपलब्ध हो और भारत अब दुनिया में विद्युत का तीसरा सबसे बड़ा उत्पादक और उपभोक्ता बन गया है।

यद्यपि हम 520 गीगावाट से अधिक विद्युत उत्पादित करने में सक्षम हैं, लेकिन किसी भी प्रणाली की असली परीक्षा अधिकतम मांग या पीक लोड को बिना किसी तरह के संचालनात्मक दबाव के संभाल सकने की उसकी क्षमता होती है। साल 2024 की गर्मियों में अधिकतम मांग रिकॉर्ड 250 गीगावाट तक पहुँच गई थी और वित्त वर्ष 2025-26 में यह 242.49 गीगावाट रही। इससे पहले मांग में इस तरह की वृद्धि से ग्रिड पर दबाव पड़ सकता था, लेकिन हमारे लोड डिस्पैच केंद्रों ने लगभग शून्य ऊर्जा हानि के साथ इसे सफलतापूर्वक प्रबंधित किया। यह मजबूती दुनिया के सबसे बड़े समकालिक ग्रिडों में से एक के कारण संभव हुई है, जिसमें 120 गीगावाट अंतर-क्षेत्रीय स्थानांतरण क्षमता है, जो देश को 'एक राष्ट्र-एक ग्रिड-एक फ्रीक्वेंसी' में एकीकृत करती है।

प्रेरणादायक बात केवल यह नहीं है कि हम कितनी विद्युत का उत्पादन करते हैं, बल्कि यह भी है कि हम उसे कैसे उत्पादित करते हैं। गैर-जीवाश्म ईंधन पर आधारित क्षमता का अंश तेजी से बढ़ा है, जिसकी बदौलत भारत 50 प्रतिशत संचयी गैर-जीवाश्म ईंधन पर आधारित विद्युत क्षमता हासिल करने के अपने एनडीसी लक्ष्य को निर्धारित समय से लगभग पाँच वर्ष पहले ही हासिल करने में समर्थ हो सका है। यह स्वच्छ ऊर्जा परिवर्तन और जलवायु के प्रति हमारी संकल्पबद्धता को दर्शाता है। 2014 से, मिशन मोड योजनाओं के माध्यम से विद्युत क्षेत्र को नए रूप में ढाला गया है, जिन्होंने पहुँच का विस्तार करते हुए सतत परिवर्तन को भी गति दी है। दीन दयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना ने भारत के हर गांव तक बिजली पहुँचायी, इसके बाद सौभाग्य योजना आई, जिसने लाखों घरों को बिजली से रोशन किया और ऊर्जा तक पहुँच को सभी के लिए वास्तविकता बना दिया।

एक अन्य परिवर्तनकारी सुधार सितंबर 2025 में समान आईएसटीएस सबस्टेशनों पर सौर और गैर-सौर घंटों के लिए अलग-अलग कनेक्टिविटी की शुरुआत है। सौर परियोजनाओं को सौर घंटों के दौरान पहुँच मिलती है, जबकि भंडारण और पवन परियोजनाओं को गैर-सौर घंटों में पहुँच मिलती है। इससे बड़ी मात्रा में अप्रयुक्त पारेषण क्षमता का उपयोग संभव होता है, अतिरिक्त लाइनों की आवश्यकता के बिना नवीकरणीय और भंडारण परियोजनाओं के कमीशनिंग में तेजी आती है, पारेषण लागत घटती है और संसाधनों का बेहतर उपयोग सुनिश्चित होता है।

डिजिटल सशक्तिकरण हमारे आधुनिकीकरण की गाथा का महत्वपूर्ण अंश है। संशोधित वितरण क्षेत्र योजना (आरडीएसएस) के तहत 3.03 लाख करोड़ रुपये के खर्च के साथ हम पूरे देश में स्मार्ट प्रीपेड मीटर लागू कर रहे हैं, जिससे उपयोगिताओं और नागरिकों के बीच संबंधों में परिवर्तन आ रहा है। इस योजना के सकारात्मक परिणाम भी सामने आ चुके हैं: एटी एंड सी हानियां 2021 में 21.91 प्रतिशत से घटकर 2025 में 15.04 प्रतिशत हो गई हैं, और प्रति यूनिट आपूर्ति पर अंडर-रिकवरी 69 पैसे से घटकर 6 पैसे रह गई है।

जैसे-जैसे हमारी डिजिटल अर्थव्यवस्था तेज़ी से बढ़ रही है, भविष्य की मांग का पूर्वानुमान लगाना भी उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि वर्तमान मांग का प्रबंधन करना। डेटा सेंटर की क्षमता 2030 तक 1.4 गीगावाट से बढ़कर 9 गीगावाट होने का अनुमान है, और केवल ये सुविधाएँ ही भारत की कुल विद्युत खपत के लगभग 3 प्रतिशत का उपयोग कर सकती हैं।

हमारा अगला लक्ष्य एआई, अनुसंधान एवं विकास और अन्य प्रौद्योगिकी-संचालित इकोसिस्टम से उत्पन्न विद्युत की विशाल और लगातार बढ़ती मांग को निरंतर रूप से पूरा करना है। जैसे-जैसे नवीकरणीय ऊर्जा का विस्तार हो रहा है, ऊर्जा भंडारण अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। भारत तेजी से बढ़ती डिजिटल अवसंरचना को स्वच्छ ऊर्जा से संचालित करने के लिए पम्प्ड स्टोरेज परियोजनाओं और बैटरी ऊर्जा भंडारण प्रणालियों का बड़े पैमाने पर विकास कर रहा है। राष्ट्रीय हरित हाइड्रोजन मिशन भारत को स्वच्छ ईंधनों के वैश्विक केंद्र के रूप में स्थापित कर रहा है, ग्रिड स्थिरता और नवीकरणीय ऊर्जा की अधिक पैठ को बढ़ावा दे रहा है।

हम परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में भी निर्णायक कदम उठा रहे हैं, जो कम कार्बन और विश्वसनीय पावर मिक्स का एक आवश्यक हिस्सा है। 2047 तक 100 गीगावाट परमाणु क्षमता का हमारा लक्ष्य और सम्बद्ध अधिनियम, 2025, हमारी तकनीकी संप्रभुता को प्रमाणित करते हैं और निजी क्षेत्र की भागीदारी के लिए कानूनी व नीतिगत ढाँचा तैयार करते हैं। अब हमें जो चाहिए, और जिसे यह समिट उत्प्रेरित कर सकता है, वह है तकनीक, वित्त और आपूर्ति श्रृंखलाओं में वैश्विक साझेदारियाँ।

विकसित भारत को ऊर्जा प्रदान करने, ग्लोबल साउथ में विद्युतीकरण को तेज करने और मजबूत, भविष्य-सक्षम ऊर्जा तंत्र बनाने के लिए, हमें महत्वाकांक्षा तक सीमित न रह कर, समन्वित कार्रवाई की दिशा में आगे बढ़ना होगा। यही वह समय है जब सरकारें, उद्योग जगत के दिग्गज, नवप्रवर्तनकर्ता और वैश्विक साझेदार मिलकर एक ऐसी नई ऊर्जा संरचना का निर्माण करें-जो स्वच्छ, विश्वसनीय, डिजिटल रूप से एकीकृत और वैश्विक रूप से आपस में जुड़ी हुई हो। भारत को सीमा-पार विद्युत सहयोग का नेतृत्व करना चाहिए; अगली पीढ़ी के पारेषण, डिजिटल ग्रिड इंटेलिजेंस और ओएसओडब्ल्यूओजी -सरेखित बाजार तंत्र में साहसपूर्वक निवेश करना चाहिए; और डिजिटल अर्थव्यवस्था के लिए नवीकरणीय ऊर्जा, हाइड्रोपावर नवाचार, लचीले गैस संसाधनों और स्वच्छ ऊर्जा का त्वरित उपयोग करना चाहिए। इस गति को ट्रांसमिशन सिस्टम ऑपरेटर और डिस्ट्रिब्यूशन सिस्टम ऑपरेटर के बीच मजबूत समन्वय और 2047 तक के लिए एकीकृत पावर सेक्टर रोडमैप द्वारा और भी सुदृढ़ किया जाना चाहिए, जो भारत को मजबूत, टिकाऊ और किफायती विद्युतीकरण का वैश्विक मॉडल बनाए।

इस पृष्ठभूमि में, नई दिल्ली में आयोजित भारत इलेक्ट्रिसिटी समिट 2026 विशेष महत्व रखता है। यह ऐसे महत्वपूर्ण समय पर हो रहा है जब राष्ट्र टिकाऊ, सुरक्षित और प्रौद्योगिकी-संचालित विद्युत तंत्र की दिशा में अपने संक्रमण को तेज कर रहा है।

'विकास को विद्युतीकृत करना, टिकाऊ भविष्य को मजबूत बनाना और दुनिया से जुड़ना' (अर्थात इलेक्ट्रिफाइंग ग्रोथ, एम्पावरिंग सस्टेनेबिलिटी, कनेक्टिंग ग्लोबली) विषय के साथ, यह समिट विभिन्न हितधारकों को एक मंच पर लाते हुए वैश्विक ऊर्जा संक्रमण में भारत की नेतृत्वकारी क्षमता को प्रदर्शित करेगा। यह बुनियादी ढाँचे के आधुनिकीकरण, नवीकरणीय क्षमता के विस्तार और ग्रिड विश्वसनीयता को मजबूत करने की भारत की प्रतिबद्धता को रेखांकित करेगा। यह समिट सहयोग, नीतिगत संवाद और निवेश जुटाने के लिए राष्ट्रीय और वैश्विक दोनों स्तर पर एक महत्वपूर्ण मंच के रूप में कार्य करेगा। हमारा अनुमान है कि 2032 तक विद्युत उत्पादन में 345 बिलियन डॉलर और पारेषण एवं वितरण में 68 बिलियन डॉलर से अधिक का निवेश संभावित है, जबकि केवल ऊर्जा भंडारण में ही 35 बिलियन डॉलर से अधिक का अवसर मौजूद है। यह वास्तविक मांग पर आधारित है, क्योंकि भारत की कुल उत्पादन क्षमता पहले ही 520 गीगावाट से अधिक है और तेजी से बढ़ रही है, साथ ही ग्रिड के उत्सर्जन तीव्रता घट रही है।

आइए, हम सभी एकजुट होकर विकसित भारत को ऊर्जा प्रदान करें और ग्लोबल साउथ की साझा समृद्धि के मार्ग को आलोकित करें।

(लेखक भारत सरकार के केंद्रीय विद्युत मंत्री हैं)।

आजकल

मिलावटखोरी का जाल और कानून की कमजोर पकड़ आखिर जिम्मेदार कौन?

मध्य प्रदेश और राजस्थान के सीमावर्ती क्षेत्रों-मुरैना, धौलपुर, सीहोर और भोपाल-में नकली घी और खाद्य मिलावट का जो नेटवर्क सामने आ रहा है, वह केवल एक आपराधिक मामला नहीं, बल्कि शासन-प्रशासन की विफलता का गंभीर संकेत है। जब एक ही व्यक्ति बार-बार गिरफ्तार होता है, जमानत पर छूटता है और फिर उसी अवैध धंधे में सक्रिय हो जाता है, तो सवाल केवल आरोपी पर नहीं, बल्कि पूरी व्यवस्था पर खड़ा होता है।

पहला बड़ा मुद्दा है कानून का भय समाप्त होना। जमानत का प्रावधान न्यायिक संतुलन के लिए है, लेकिन इसका दुरुपयोग तब स्पष्ट दिखता है, जब गंभीर आर्थिक अपराधों और जनस्वास्थ्य से जुड़े मामलों में आरोपी आसानी से बाहर आकर फिर अपराध दोहराते हैं। नकली घी जैसे मामलों में यह केवल धोखाधड़ी नहीं, बल्कि लोगों के स्वास्थ्य के साथ सीधा खिलवाड़ है-जो लंबे समय में कैंसर, लिवर और हृदय रोग जैसी गंभीर बीमारियों को जन्म दे सकता है।

दूसरा पहलू है विभागीय लापरवाही। खाद्य सुरक्षा विभाग, पशुपालन विभाग और स्थानीय प्रशासन की भूमिका यहां कठघरे में है। यदि कोई कंपनी बड़े पैमाने पर घी या डेयरी उत्पाद बना रही है, तो उसके स्रोत-डेयरी, पशु, उत्पादन यूनिट-का सत्यापन अनिवार्य है। लेकिन जब यह मूलभूत जांच ही नहीं होती, तो स्पष्ट है कि या तो सिस्टम निष्क्रिय है या फिर भ्रष्टाचार से प्रभावित है।

तीसरा, फर्जी दस्तावेजों और पहचान का इस्तेमाल-जैसे डॉक्टर की आईडी का दुरुपयोग-यह दिखाता है कि अपराधी केवल मिलावट तक सीमित नहीं हैं, बल्कि संगठित आर्थिक अपराध कर रहे हैं। यह फर्जीवाड़ा और आपराधिक षड्यंत्र की श्रेणी में आता है, जिसमें कड़ी सजा का प्रावधान है। इसके बावजूद, यदि कार्रवाई ढीली है, तो यह कानून लागू करने वाली एजेंसियों की कमजोरी को दर्शाता है। चौथा और सबसे चिंताजनक पहलू है सामाजिक प्रभाव। जब मिलावटखोर खुलेआम 'टंकी की चोट पर' कारोबार करते हैं, तो आम जनता में यह संदेश जाता है कि पैसे और पहुंच के बल पर कानून को झुकाया जा सकता है। यह लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए खतरनाक संकेत है।

समाधान क्या है? सबसे पहले, ऐसे मामलों में कठोर दंड और जमानत की शर्तों को सख्त किया जाना चाहिए। दूसरी बात, इंटर-स्टेट समन्वय-विशेषकर मध्य प्रदेश और राजस्थान के बीच-मजबूत हो। तीसरा, खाद्य उत्पादों की ट्रेसबिलिटी को अनिवार्य किया जाए। और अंत में, दोषी अधिकारियों की जवाबदेही तय हो-क्योंकि बिना प्रशासनिक मिलीभगत के इतना बड़ा नेटवर्क संभव नहीं। यदि अब भी सख्ती नहीं हुई, तो मिलावट का यह जहर केवल बाजार तक सीमित नहीं रहेगा, बल्कि हर घर की थाली तक पहुंच जाएगा।

छोटे शहरों में पीपीपी मॉडल पर मेडिकल कॉलेज सपना, चुनौतियाँ और गुणवत्ता का सवाल

भारत में चिकित्सा शिक्षा का विस्तार लंबे समय से एक महत्वपूर्ण नीति लक्ष्य रहा है। देश की बढ़ती आबादी, डॉक्टरों की कमी और ग्रामीण-अर्धशहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की कमजोर स्थिति को देखते हुए सरकार ने छोटे शहरों में मेडिकल कॉलेज खोलने की योजना बनाई। इसी सोच के तहत कई राज्यों ने पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप मॉडल को अपनाने का प्रयास किया। विचार यह था कि सरकार और निजी क्षेत्र मिलकर संसाधन जुटाएँ और तेजी से मेडिकल कॉलेज स्थापित किए जाएँ।

मध्य प्रदेश में भी इस दिशा में महत्वाकांक्षी योजनाएँ बनाई गईं, लेकिन जमीनी स्तर पर यह मॉडल कई कारणों से अपेक्षित सफलता हासिल नहीं कर पा रहा है। स्थिति यह है कि कई जिलों में मेडिकल कॉलेज का सपना अभी भी अधूरा है और जहाँ कॉलेज हैं, वहाँ फैकल्टी की भारी कमी चिकित्सा शिक्षा की गुणवत्ता पर गंभीर सवाल खड़े कर रही है।

छोटे शहरों और जिलों में मेडिकल कॉलेज खोलने के पीछे कई सकारात्मक उद्देश्य थे। पहला, इससे स्थानीय स्तर पर बेहतर स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध हो सकती थीं। मेडिकल कॉलेज के साथ अस्पताल भी विकसित होता है, जिससे विशेषज्ञ डॉक्टरों की सेवाएँ आम लोगों तक पहुँचती हैं। दूसरा, मेडिकल शिक्षा का विकेंद्रीकरण होता और महानगरों पर निर्भरता कम होती। तीसरा, स्थानीय छात्रों को अपने ही क्षेत्र में पढ़ाई का अवसर मिलता और डॉक्टरों का पलायन कुछ हद तक रुक सकता था। इन उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए मध्य प्रदेश सरकार ने कई जिलों में मेडिकल कॉलेज खोलने की योजना बनाई और कुछ जगहों पर पीपीपी मॉडल के जरिए निवेशकों को आकर्षित करने का प्रयास किया।

पीपीपी मॉडल का मूल विचार यह था कि सरकार जमीन, बुनियादी ढांचा या आंशिक वित्तीय सहयोग देगी और निजी क्षेत्र निवेश, प्रबंधन तथा संचालन की जिम्मेदारी संभालेगा। सैद्धांतिक रूप से यह मॉडल तेजी से संस्थान खड़े करने का एक व्यावहारिक विकल्प माना गया, लेकिन व्यवहार में कई समस्याएँ सामने आईं। निजी निवेशक छोटे शहरों में मेडिकल कॉलेज खोलने को लेकर उतने उत्साहित नहीं दिखे। मेडिकल कॉलेज स्थापित करना अत्यंत महंगा होता है-भवन, अस्पताल, उपकरण, लैब, फैकल्टी और संचालन पर भारी खर्च आता है। छोटे शहरों में निवेशकों को आर्थिक लाभ की संभावना कम दिखाई देती है, इसलिए वे इस मॉडल में रुचि नहीं लेते।

मध्य प्रदेश के कई जिलों में मेडिकल कॉलेज खोलने की योजना वर्षों से चर्चा में है। धार, कटनी, पन्ना और बैतूल जैसे जिलों में 2025 तक मेडिकल कॉलेज शुरू करने का सपना दिखाया गया था, लेकिन कई परियोजनाएँ अब भी अधूरी हैं। दूसरी ओर अशोकनगर, मुरैना, सीधी, गुना, बालाघाट, भिंड, टीकमगढ़, खरगोन और शाजापुर जैसे जिलों में पीपीपी मॉडल के तहत अब तक कोई ठोस निवेशक सामने नहीं आ पाया है। जहाँ मेडिकल कॉलेज शुरू भी हो चुके हैं, वहाँ फैकल्टी का संकट गंभीर है। नीमच, मंदसौर और सतना जैसे कॉलेजों में प्रोफेसर और एसोसिएट प्रोफेसर के लगभग 50 प्रतिशत पद खाली बताए जाते हैं। यह स्थिति चिकित्सा शिक्षा की गुणवत्ता के लिए चिंताजनक है। कई जिलों में अभी तक मेडिकल कॉलेज के लिए औपचारिक समझौता भी नहीं हो पाया है, जिससे योजनाएँ कागजों तक सीमित रह जाती हैं।

मेडिकल कॉलेज चलाने के लिए केवल भवन और उपकरण पर्याप्त नहीं होते। सबसे महत्वपूर्ण तत्व होता है-अनुभवी डॉक्टर और वरिष्ठ फैकल्टी। छोटे शहरों में यही सबसे बड़ी चुनौती बनकर सामने आती है। वरिष्ठ डॉक्टर और विशेषज्ञ आमतौर पर बड़े शहरों या प्रतिष्ठित संस्थानों में काम करना पसंद करते हैं। ग्रामीण या छोटे शहरों में उन्हें पर्याप्त सुविधाएँ, अनुसंधान का वातावरण, शिक्षा के अवसर और जीवनशैली के विकल्प नहीं मिलते। परिणामस्वरूप मेडिकल कॉलेजों में प्रोफेसर, एसोसिएट प्रोफेसर और विशेषज्ञ डॉक्टरों की भारी कमी हो जाती है, जिससे छात्रों की पढ़ाई और प्रशिक्षण प्रभावित होता है।

पीपीपी मॉडल को लेकर अन्य राज्यों के अनुभव भी मिश्रित रहे हैं। कर्नाटक में एक समय इस मॉडल को अपनाने की कोशिश की गई थी, लेकिन फीस, फैकल्टी और सरकारी नियंत्रण को लेकर बड़े विवाद खड़े हो गए। अंतत: सरकार ने निर्णय लिया कि चिकित्सा शिक्षा को पूरी तरह मुनाफे के मॉडल पर नहीं छोड़ा जा सकता और सरकारी मेडिकल कॉलेजों पर ही अधिक जोर दिया जाना चाहिए। मेघालय ने भी इसी तरह की योजना से दूरी बना ली। दक्षिण भारत के कुछ राज्यों-केरल, कर्नाटक और तमिलनाडु-में निजी मेडिकल कॉलेजों की आर्थिक स्थिति को लेकर भी सवाल उठे हैं। कई संस्थानों पर भारी कर्ज और संचालन संबंधी कठिनाइयों के कारण संकट की स्थिति बनी। सबसे बड़ी चिंता चिकित्सा शिक्षा की गुणवत्ता को लेकर है। यदि कॉलेज तो तेजी से खुलते जाएँ लेकिन योग्य फैकल्टी और प्रशिक्षण सुविधाएँ उपलब्ध न हों, तो छात्रों को उचित शिक्षा नहीं मिल पाएगी। ऐसी स्थिति में भविष्य के डॉक्टरों की दक्षता प्रभावित हो सकती है। विशेषज्ञों का मानना है कि यदि शिक्षा की गुणवत्ता कमजोर होगी तो इसका सीधा असर स्वास्थ्य सेवाओं पर पड़ेगा। कुछ आलोचकों का यह भी कहना है कि यदि स्थिति गंभीर हुई तो ऐसे डॉक्टर निकलेंगे जिन्हें आगे की पढ़ाई, विशेषकर पीजी में प्रवेश के लिए कम योग्यता स्तर पर भी मौका देना पड़ेगा। यह स्वास्थ्य व्यवस्था के लिए खतरनाक संकेत हो सकता है।

इस समस्या का समाधान केवल पीपीपी मॉडल पर निर्भर रहने से नहीं निकल सकता। सरकार को कई स्तरों पर ठोस कदम उठाने होंगे। पहला, छोटे शहरों में काम करने वाले डॉक्टरों और फैकल्टी के लिए बेहतर प्रोत्साहन नीति बनानी होगी, जैसे अधिक वेतन, आवास, अनुसंधान सुविधाएँ और करियर ग्रोथ। दूसरा, मेडिकल कॉलेजों के साथ मजबूत अस्पताल प्रणाली विकसित करनी होगी, ताकि डॉक्टरों को पेशेवर संतोष और व्यावहारिक अनुभव दोनों मिल सकें। तीसरा, सरकार को कुछ जिलों में पूरी तरह सरकारी मेडिकल कॉलेज स्थापित करने का साहसिक निर्णय भी लेना पड़ सकता है, ताकि शिक्षा की गुणवत्ता पर नियंत्रण बना रहे। चौथा, टेलीमेडिसिन, डिजिटल शिक्षा और राष्ट्रीय स्तर के संस्थानों के साथ सहयोग जैसे नए मॉडल भी अपनाए जा सकते हैं। छोटे शहरों में मेडिकल कॉलेज खोलना निस्संदेह एक महत्वपूर्ण और आवश्यक लक्ष्य है। इससे स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार होगा और क्षेत्रीय असमानता कम हो सकती है। लेकिन केवल संख्या बढ़ाना ही पर्याप्त नहीं है। यदि फैकल्टी, अस्पताल और शिक्षा की गुणवत्ता पर ध्यान नहीं दिया गया तो यह प्रयास उल्टा परिणाम भी दे सकता है। पीपीपी मॉडल अपने आप में समाधान नहीं है; इसके लिए मजबूत नीति, पारदर्शी व्यवस्था और दीर्घकालिक योजना की आवश्यकता है। सरकार को अब अधिक व्यावहारिक और साहसिक निर्णय लेने होंगे, ताकि मेडिकल कॉलेज केवल भवन और सीटों की संख्या तक सीमित न रहें, बल्कि वास्तव में ऐसे डॉक्टर तैयार करें जो देश की स्वास्थ्य व्यवस्था को मजबूत बना सकें।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

नेपाल में युवा नेतृत्व का उदय : उम्र बाधा नहीं, अवसर है

राजनीति की दुनिया में दशकों तक यह धारणा रही है कि अनुभव और उम्र ही किसी नेता की ताकत होती है। लेकिन नेपाल में हालिया घटनाक्रम ने इस मान्यता को चुनौती दी है। 35 वर्षीय बालेंद्र शाह, जिन्हें जनता 'बालेन' के नाम से जानती है, कम उम्र में ही देश के नेतृत्व की राह पर अग्रसर हैं। उनके राजनीतिक सफर ने यह संदेश दिया है कि अब राजनीति में युवा ऊर्जा और नवीन सोच भी निर्णायक हो सकती है।

बालेंद्र शाह की सफलता केवल नेपाल तक सीमित नहीं है। यह दक्षिण एशियाई देशों में युवाओं के लिए प्रेरणा का प्रतीक है। अगर हम क्षेत्र के अन्य देशों पर नजर डालें तो पाएंगे कि अधिकांश शीर्ष नेताओं की उम्र अब वरिष्ठता की श्रेणी में आती है। उदाहरण के लिए, भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी 75 वर्ष के हैं, पाकिस्तान के प्रधानमंत्री शहबाज शरीफ 74 वर्ष के, और बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना 76 वर्ष की हैं। भूटान के प्रधानमंत्री त्शेरिंग टोबगाय लगभग 58 वर्ष के हैं, जबकि मालदीव के राष्ट्रपति मोहम्मद मुइज्जु 47 वर्ष की उम्र में सत्ता संभाल रहे हैं। इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि बालेंद्र शाह जैसे युवा नेता क्षेत्र में एक नया राजनीतिक आयाम प्रस्तुत कर रहे हैं।

राजनीति में युवा हिस्सेदारी की मांग कोई नई बात नहीं है। पहले लोकसभा में 6 में से एक सांसद की उम्र 35 वर्ष से कम थी, जबकि 2024 के लोकसभा चुनाव में यह अनुपात घटकर 21 में से एक रह गया। यह संकेत है कि पारंपरिक रूप से वरिष्ठ नेताओं का प्रभुत्व बढ़ा है, लेकिन यही वातावरण अब बदल रहा है। विश्व स्तर पर भी लंबे समय तक सत्ता में बने नेताओं के उदाहरण मिलते हैं। ब्रिटेन की मार्गरेट थैचर और अफ्रीका के कई राष्ट्राध्यक्ष दशकों तक सत्ता में रहे। लेकिन अब युवा नेतृत्व की संभावनाएं बढ़ रही हैं।

नेपाल में बालेंद्र शाह का उदय इस बदलाव का स्पष्ट उदाहरण है। उनकी जीत ने न केवल पुरानी पार्टियों को चुनौती दी, बल्कि यह भी दिखाया कि युवा नेतृत्व लोकतंत्र में नई ऊर्जा और विचारधारा का प्रतीक बन सकता है। विशेष रूप से यह बदलाव युवा मतदाताओं और जेन-जेड पीढ़ी की सक्रिय भागीदारी का परिणाम है। उन्होंने पारंपरिक राजनीतिक व्यवस्थाओं के विरोध और नई नीतियों की मांग में अपनी आवाज उठाई। बालेंद्र शाह जैसे नेता यह संदेश दे रहे हैं कि राजनीति में उम्र अब बाधा नहीं, बल्कि अवसर है।

नेपाल में बालेंद्र शाह का उदय इस बदलाव का स्पष्ट उदाहरण है। उनकी जीत ने न केवल पुरानी पार्टियों को चुनौती दी, बल्कि यह भी दिखाया कि युवा नेतृत्व लोकतंत्र में नई ऊर्जा और विचारधारा का प्रतीक बन सकता है। विशेष रूप से यह बदलाव युवा मतदाताओं और जेन-जेड पीढ़ी की सक्रिय भागीदारी का परिणाम है। उन्होंने पारंपरिक राजनीतिक व्यवस्थाओं के विरोध और नई नीतियों की मांग में अपनी आवाज उठाई। बालेंद्र शाह जैसे नेता यह संदेश दे रहे हैं कि राजनीति में उम्र अब बाधा नहीं, बल्कि अवसर है। नेपाल की राजनीतिक धारा में यह बदलाव केवल एक देश तक सीमित नहीं रहेगा। यह पूरे क्षेत्र के लिए संकेत है कि भविष्य की राजनीति में युवा नेतृत्व और नवोन्मेषी सोच निर्णायक भूमिका निभाएगी। लोकतंत्र में अनुभव के साथ-साथ युवा ऊर्जा और तकनीकी कौशल का योगदान भी उतना ही महत्वपूर्ण होगा।

बालेंद्र शाह की कहानी यह साबित करती है कि राजनीतिक नेतृत्व केवल उम्र या अनुभव का खेल नहीं है। यह साहस, दूरदर्शिता और जनता के प्रति सच्ची प्रतिबद्धता का परिणाम है। नेपाल का यह युवा नेतृत्व पूरे दक्षिण एशिया के लिए प्रेरणा है और भविष्य की राजनीति के लिए नया मार्गदर्शन प्रस्तुत करता है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)